कुरआन और निज़ामे हुकूमत

लेखक – आयतुलाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
अनुवादक – जनाब मक़बूल हुसैन नक़वी जायसी

पाकिस्तानी बहुसंख्यको के गम्भीर विचार वाले उलमा में कौसर नियाज़ी साहब भी एक विशिष्ट स्थान रखते हैं किन्तु कितना ही विद्वान व्यक्ति क्यों न हो पुरानी परम्पराओं की जंजीरों से छुटकारा पाना उसके लिए बहुन कठिन होता है। अतः पाकिस्तानी पत्रिकाओं ने प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बन्धित जो उनके विचार प्रकाशित किए हैं वे स्पष्ट उस परम्परा पर आश्रित हैं जहां मनुष्य सोच और समझ की बातें करते करते एकाएक बेसोची समझी रटी–रटाई बातें करने लगता है। अतएव उन्होंने यह कह दिया कि ''इस्लाम ने निज़ामे हुकूमत के बारे में कोई स्पष्ट मार्गदर्शन नहीं दिया है'' हालांकि कुरआन मजीद में साफ साफ अंकित है कि:–

''पैग़म्बर को मोमिनीन पर खुद उनके नुफूस से ज़्यादा इख़्तियार है'' अब जबकि मोमिनीन का व्यक्तिगत अधिकार ही रसूल के आगे समाप्त हो गया तो न उनका सर्वमान्य निर्णय बाक़ी बचा और न बहुमत के मतों का कोई विश्वास बाक़ी रहा। दूसरी जगह अंकित है कि:–

''किसी मोमिन व मोमिना को यह अधिकार नहीं है कि अल्लाह और पैगम्बर किसी बात का फैसला कर दें तो फिर वो अपने मामलात में किसी इखतियार (अधिकार) से काम लें।''

याद रखना चाहिए कि परामर्श व्यवस्था (निजामे शूरवी) के लिए जो आयत पेश की जाती है वह है ''वा मिनहुम शूरा बैनहुम''शर्त यह है कि निज़ामे हुकूमत आपसी परामर्श से होना चाहिए।'' इसमें जो अम्र का लफ्ज़ है यही अम्र का शब्द ''मा काना लहुम खैरतुन मिनअमरेहिम'' में भी मौजूद है।

अब अगर वहाँ अम्र शब्द का तात्पर्य वह है जैसे कहते हैं कि मैं एक अम्र (विशय) में आप से परामर्श करना चाहता हूँ तो अर्थ यह है कि अपने मामलात को सलाह मशविरा से तय करना उचित है। यह आदेश प्रति दिन के कार्य कलापों से सम्बन्ध रखता है। इसमें प्रशासनिक व्यवस्था का कोई वर्णन नहीं है। तो हमारी प्रस्तुत आयत में यह अर्थ होगा जैसा कि हमने अनुवाद किया है कि खुदा और रसूल के निर्णय के बाद उन्हें अपने मामलात में किसी फैसले का अधिकार नहीं है। ऐसी दशा में दोनों आयतों से सम्मिलित रूप से यह परिणाम निकलेगा कि शूरा (आपसी परामर्श) उन विषयों में होगा जहाँ खुदा और रसूल का कोई निर्णय उपलब्ध नहीं है।

और अगर उससे प्रशासनिक व्यवस्था का तात्पर्य है तो यहां यह अर्थ होगा कि जब खुदा और रसूल कोई निर्णय कर दें तो उन्हें अपने प्रशासनिक व्यवस्था के विषय में कोई अधिकार नहीं है।

अतः प्रत्येक दशा में खुदा और रसूल की ओर से किसी हाकिम की नियुक्ति के पश्चात न बहुमत का कोई महत्व होगा न आपसी निर्णय या पंच का।

प्रशासनिक व्यवस्था मशवेरती (आपसी परामर्श की) होना चाहिए इसका अर्थ एक तो यह हो सकता है कि शासक को जन साधारण के परामर्श से चुना हुआ होना चाहिए और दूसरा अर्थ यह है कि हाकिम का चुनाव चाहे जिस प्रकार भी हुआ हो वह अपने आदेशों व कार्यों को

सब की सहमति से कार्यान्वित करेगा।

अगर पहली स्थिति हो तो मालूम होना चाहिए कि "सामान्य शब्दों" जब इस्लामी हुकूमत गठित हुई तो सर्व प्रथम शासक उसके पैग़म्बरे इस्लाम स० थे क्या किसी मजलिसे शूरा (परामर्शदाताओं की बैठक) द्वारा चयन किए गये थे? ख़ैर मदीने की हिजरत से पहले तो कहा जाता है कि आप जब एक समाज का गठन हो गया था और आप की हैसियत केवल रसूल[स०] की थी किन्तु मदीने में आने के पश्चात स्थिति एक शासक की होने वाली थी तो अगर इस्लाम में शासक के चुनाव में चुनावी प्रणाली होती तो पैग़म्बर खुदा को मुसलमानों की सभा करके इस समस्या को उनके समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए था और तब मुसलमानों को अधिकार होता कि वे शासक आप ही को चुनें या आप को मात्र धर्म गुरू समझें और शासक किसी और को चयनित करें। इस प्रकार वे आपसे धार्मिक समस्यांए पूछते और आप राज्य संचालन में उसके अधीन होते मगर ऐसा नहीं हुआ और हरग़िज नहीं हुआ। यह स्थिति उस विचार धारा को ग़लत साबित करने के लिए काफ़ी है और अगर दूसरे अर्थ समझे जाएं अर्थात यह कि हाकिम चाहे जिस प्रकार बना हो उसके कार्य हर दशा में मशवरा (सलाह) से ही होना चाहिए तो वास्तविकता यह है कि इस पर कार्यान्वन न पैग़म्बरे खुदा के यहां सिद्ध होता है न उसके बाद जो बहुमत द्वारा शासक नियुक्त हुए उनके यहां ज्ञात होता है। रसूल[स०] ने हुदैबिया की सुलह की जबकि अधिकांश मुसलमान इसके विरूद्ध थे।

खलीफा–ए–अव्वल ने उसामा के लश्कर को भेजने के विषय में परामर्श देने वालों की असहमति पर ध्यान नहीं दिया न मालिक बिन नुवैरा की हत्या होने पर खालिद बिन वलीद के पद चयन करने की राय पर अमल किया। तीसरे ख़लीफा ने अपने नातेदारों को ऊँचे पद देने के विरूद्ध जो आम राय थी उसे नहीं माना। अमीरूलमोनीन हज़रत अली बिन अबीतालिब[अ०] को यह राय दी गयी कि वे मुआविया को अभी हुकूमते शाम में गवर्नर के पद पर बना रहने दें। ज्ञात होता है कि किसी भी दृष्टिकोण के मुसलमान के लिए जिन शासकों का अमल विशवस्त हो सकता है वे उस पर अमल नहीं करते थे कि प्रशासनिक व्यवस्था आपसी परामर्श से होना चाहिए। आश्चर्य यह है कि मौलाना कौसर नियाज़ी साहब को यह भी स्वीकार है किः–

"कुरआन पाक ने ज़िन्दगी के विभिन्न विभागों में छोटी से छोटी बात में मुसलमानों का मार्गदर्शन किया है और जिस मसअले को तय करना चाहा है उसे फिक्र पर नहीं छोड़ा बल्कि पूरी तरह तय कर दिया और मुसलमान उस तय रास्ते से बाल भर भी हट नहीं सकते।" परन्तु इस के साथ एक अदद "लेकिन" के साथ वो फरमाते हैं किः–

"निज़ामे हुकूमत को तय करने के लिए कुरआन पाक ने सिर्फ और सिर्फ इस हद तक रहनुमाई की है कि निजामें हुकूमत आपसी परामर्श से होना चाहिए। इसके अलावा कुरआन पाक ने कोई स्पष्ट सिद्धान्त तय नहीं किया है।"

अब भला किस बुद्धिमान के स्वीकार करने की यह बात है जिस महान पुस्तक में रोज़ मर्रा की छोटी–छोटी बातों को बिना समझाए नहीं छोड़ा गया हो वो हुकूमत ऐसी सर्वव्यापी प्रभाव रखने वाली चीज़ को बिल्कुल छोड़ दे और उसे दोषपूर्ण मनुष्यों के स्वार्थों के अधीन जान कर और अज्ञानता के अधीन अनजाने में गलत कार्यों के हवाले कर दे।

अगर हुकूमत के बारे में उसने पथ प्रदर्शन नहीं किया है तो उसे यह निर्णय लेना अधिक उचित होगा कि यहाँ दीनी रहनुमा से अलग कोई हुकूमत की कल्पना ही नहीं है अगर धर्म गुरू कार्य वितरण के अधीन किसी को राज्य का व्यवस्थापक बना दें तो प्रशासनिक व्यवस्था में उसे धर्म गुरू से ही मार्गदर्शन लेना होगा न कि उसे अपनी व्यक्तिगत राय से काम करने का

अधिकार होगा और न दुनियावी लोगों के परामर्श से ग़रज़ होगी। हाँ दुनियावी मामलों में स्वंय वह धर्म गुरू जब उचित समझें कुछ लोगों से परामर्श कर लें जिसका तात्पर्य उन लोगों को परिणाम का भागीदार बनाना भी हो सकता है और मन की सन्तुष्टि भी जो कुरआानी इरशाद ''व शाविरहुम फिल अम्र'' से स्पष्ट है किन्तु वह इन मश्विरों पर कार्यान्वन हेतु बाध्य नहीं है बल्कि जब उचित समझें मानें और जब उचित न समझें न मानें ''फइज़ा अज़मता फतवक्कल अलल्लाह'' (जब इरादा कर लिया तो अल्लाह पर भरोसा करो)।

जैसा कि पैग़म्बर खुदा स्वलललललाहु अलैहि व आलेहि व सल्लम के अमल के उदाहरणों से सामने आता है, जो तमाम मुसलमानों के लिए सनद है। और ख़ुलफाए सलासा के अमल से भी इसका सुबूत मिलता है जो मुसलमानों की अकसरियत के लिए तो सनद है ही और हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ०) के अमल से भी जो दोनों पक्षों के लिए प्रमाण है।

कौसर साहब फरमाते हैं किः—''यह बात पूरी तरह स्पष्ट है कि बाज़ पैग़म्बर बादशाह भी थे और बाज़ पैग़म्बरों ने बादशाह की नियुक्ति भी की।''

किन्तु यहां नियाज़ी साहब इस पहलू को भूल गए कि जो पैग़म्बर बादशाह हुए या जिन्होंने बादशाहों को नियुक्त किया वह क्या सर्वसम्मति अथवा राय मश्वरे से हुआ था।

कुरआन तो क़िस्सए तालूत में साफ बता रहा है कि वह बादशाह भी जो पैग़म्बर की ओर से नियुक्त होता है उसमें किसी परामर्श का दख़ल नहीं होता यहां तक कि क़ौम आपत्ति भी करती है तो उसकी आपत्तियों की परवाह नहीं की जाती है और अल्लाह द्वारा चयनित किये जाने की परवाह नहीं की जाती है और अल्लाह द्वारा चयनित किये जाने का हवाला देकर उसे खामोश कर दिया जाता है।

अतः इससे यह परिणाम निकलता है कि वह बादशाह जिसकी हुकूमत दीनी व इस्लामी कही जा सके वही होती है जो खुदा की तरफ़ से चुना हुआ हो चाहे वह स्वयं नबी या रसूल हो चाहे नबी व रसूल की ओर से नियुक्त किया हुआ शासक हो इसके अलावह जो हुकूमत बनेगी चाहे वह तानाशाही बादशाहों की तरह हो परामर्श से चुना गया हो दुनियावी हुकूमत होगी धार्मिक दृष्टिकोण से उसकी कोई हैसियत नहीं है।



(पेज नं0 10 का बक़िया......रसूल की बेटी)

धन्यभाव) करती थीं। कमसिनी में मां की वफ़ात का सदमा (ठेस, खटक) उठाना पड़ा मगर आपने सब्र किया। बाप के पास इज़्ज़तो—मुहब्बत (सम्मान, प्रेम) से रहीं मगर फक्रो—फाके (कठिनाई और भूल) से बसर (व्यतीत) की। कभी मलूल (दुःखी) और दिल तंग (उदास मन) नहीं हुई। हज़रत अली के घर आकर भी वही हालत हुई बल्कि यहां तो सख्त से सख्त काम किये। चक्की पीसी, पानी भरा, मगर कभी उफ़ नहीं की और न हज़रत अली से कभी शिकायत की। रसूल की वफात के बाद बाप की जुदाई का ग़म भी सहा और दुनिया वालों से विभिन्न प्रकार की तक्लीफें (कष्ट) पंहुची मगर आपने सब्र किया। किसी के लिए आपने कभी बद्दुआ (श्राप) नहीं की बल्कि हर मुसीबत पर सब्र और हर हालत में शुक्रे—खुदा (भगवान के प्रति धन्यभाव) करती रहीं।

लड़कियो ! खूब समझ लो कि जनाबे सय्यदा की ज़िन्दगी का खास जौहर (सत्ता) सब्र है।

लड़कियों से आखिरी ख़िताब (अन्तिम सम्बोधन)

हज़ारों लाखों तारीफ़ खुदा के लिए है जिसके सहारे मैंने अपने मोहतरम (पूज्य) पैग़म्बर की प्यारी बेटी के जीवन—चरित्र जिस प्रकार मुझसे हो सका, लिखकर तुम्हें एक सही इस्लामी ज़िन्दगी अपनाने को रास्ता दिखा दिया जिस पर चलना अल्लाह की मेहरबानी पर निर्भर है।

अगर तुमने इस किताब को ध्यान से पढ़ा और इसे आम किस्से कहानियों की तरह न समझा तो उम्मीद है कि तुम एक आज्ञाकारी बेटी, एक पवित्र बीवी और एक मुहब्बत करने वाली मां बन जाओगी जो स्त्री जाति के जीवन का वास्तविक लक्ष्य है।

(इमामिया मिशन, लखनऊ प्रकाशन न0 768)